International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

1857 के महाविद्रोह में कृषकों की भूमिका का अवलोकन

रिंकु कुमारी
शोधार्थी,
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
मोबाईल नं0 – 9473150163
ई–मेल – santgyaneshwarjagran@gmail.com

1857 का विद्रोह ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारत के परंपरागत संघर्ष की सबसे नाटकीय परिणति थी। लेकिन यह विद्रोह कोई अचानक आया उबाल नहीं था। बल्कि यह जनता के संघर्ष की पराकाष्ठा थी, जो 1757 में ब्रिटिश राज की शुरूआत के बाद से ही सुगबुगाने लगा था और यही सुगबुगाहट धीर–धीरे– बढ़ती गई थी । भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना भी महज एक घटना नहीं थी, बल्कि यह भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के औपनिवेशीकरण और धीरे– धीरे उसको दबाए रहने की लम्बी प्रक्रिया का नतीजा थी। इस प्रक्रिया में हर स्तर को लगातार छिटपुट प्रतिरोधों का सामना भी करना पड़ा।'

राजाओं, नवाबों और जमींदारों के परंपरागत आभिजात्य वर्ग के साथ एकजुट होकर, किसानों और दस्तकारों द्वारा हथियार उठा लिये जाने के पीछे अनेक कारण थे। लगान की लगातार ऊँची दरों के कारण किसान या तो कर्ज के बोझ तले दबते चले गए या उन्हे अपनी जमीन बेचने पर मजबूर होना पड़ा। नए भूस्वामियों ने किसानो को जो जमीने पट्टे पर दी, उनका किराया इतना बढ़ा दिया कि उसे चुका पाना किसानों के बूते के बाहर की बात हो गई। किराया न चुका पाने वालों को बेदखल करने में इन नए भूस्वामियों को तनिक भी हिचकिचाहट नही होती थी। इस तरह कृषक तबके की अर्थव्यवस्था बुरी तरह चरमराई।[1]

नए कानूनी तंत्र और अदालतों ने गरीब किसानों की जमीनों की बेदखली को और भी बढ़ावा दिया और उनके शोषण के लिए अमीर तबके का रास्ता और भी साफ किया। लगान, किराया या ब्याज की वसूली के लिए किसानों पर तरह–तरह के जुल्म ढ़ाए जाने लगे। किसानो को कोड़े मारना, अमानुषिक यातनाएँ देना और जेल भिजवा देना तो बिल्कुल आम बात हो गई। पुलिस, प्रशासन और न्यायपालिका में निचले स्तरों पर व्याप्त जबरदस्त भ्रष्टाचार से आम आदमी की परेशानियाँ भी काफी बढ़ गई थी। गरीबों का खून चूसकर छोटे–छोटे अधिकारी भी दौलत बटोर रहे थे। पुलिस की जब मरजी होती, लोगों को लूटती, तरह–तरह के जुल्म करती और मनमाना शोषण करती। ब्रिटिश अधिकारी विलियम एडवर्ड्स ने 1859 में लिखा था कि "पुलिस जनता की उत्पीड़क हो गई है और हमारी सरकार के प्रति असंतोष का मुख्य कारण पुलिस द्वारा ढ़ाए जाने वाले जुल्म है।"[2]

भारत में मुक्त व्यापार लागू करने और भारतीय उत्पादकों के मनमाने ढगं से लेबी वसूल किए जाने से भारतीय दस्तकारी उधोग भी चौपट हो गया, जिससे लाखों दस्तकारों के लिए रोटी तक मुहाल हो गई। फिर राजाओं नवाबों और जमींदारों के यहाँ इन दस्तकारों का ज्यादातर माल खपत था, लेकिन इन लोगों की खस्तहाली के कारण दस्तकारी के सामानों के लिए ग्राहक मिलने भी मुश्किल हो गए जिससे यह उधोग बुरी तरह टूटा।[3]

विद्रोह का सिलसिला पूरे भारत मे ब्रिटिश राज की स्थापना के साथ ही शुरू हो गया था और जिन–जिन क्षेत्रों को यह औपनिवेशिक शासन निगलता गया वहाँ–वहाँ विद्रोह के झंडे बुलंद किये जाते रहे। शायद ही ऐसा कोई साल रहा हो, जब देश में अंग्रेजो का सशस्त्र प्रतिरोध न किया गया हो और शायद ही ऐसा कोई दशक गुजरा हो, जिसमें अंग्रेजो के खिलाफ एक बड़ा विद्रोह न हुआ हो। 1857 में देश भर में अंग्रेजो के खिलाफ नागरिक विद्रोह सबसे बड़ा विद्रोह माना जाता है।[4]

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 8 Issue 3, March - 2018
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

समकालीन अंग्रेज इतिहासकारों से लेकर अब तक यह एक मुद्दा या विषय बना हुआ है कि 1857 ई0 के विप्लव का स्वरूप कैसा था। कुछ इतिहासकारों ने इसे केवल सैनिक विद्रोह बताया है। 1857 ई0 में भी कुछ अंग्रेज लेखकों की यह मान्यता थी कि यह विप्लव जन साधारण द्वारा असंतोष अभिव्यक्ति का एक उदाहरण था। किन्तु अधिकांश अंग्रेज लेखक इसे एक सैनिक विद्रोह मात्र ही मानते थे। ईसाई मिशनरी तथा इवेजेलिकल विचारधारा से प्रभावित लेखक इस विद्रोह को ईश्वर द्वारा भेजी गई विपति मानते थें क्योंकि कंपनी प्रशासन ने भारतीय प्रजा को ईसाई नहीं बनाया। 19वीं सदी के अंतिम वर्षो में अंग्रेज लेखक साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से काफी प्रभाव डाला, इसलिए वे 1857 ई0 को केवल एक सैनिक विद्रोह मात्र कहते थे। विभिन्न पुस्तकों में अंग्रेजों की कठिन एवं विषम परिस्थितियों की, अंग्रेजों के साहस, सैनिक कौशल की अधिक चर्चा होती थी। साथ ही अंग्रेजों की जातीय सर्वोच्चता, उनके धैर्य और व्यक्तिगत उपक्रम तथा उधम की महानता को स्पष्ट किया जाता था। अंग्रेजी साम्राज्य के शक्तिशाली प्रभाव में भारतीय लेखक भी उसी दृष्टिकोण को सही मानते है। इस विचार के विपरीत पहली बार 1909 ई0 में विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 ई0 के विप्लव को "भारत की स्वतंत्रता का युद्ध" कहा और इस शीर्षक के नाम से एक ग्रंथ की रचना भी किया जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को प्रेरणा देने में कुछ सीमा तक महत्वपूर्ण साबित हुआ।[5]

भारत देश ने 1857 में इस क्रांति की पहली शताबदी मनायी जिसमें भारत सरकार अनुसंधानकर्ताओं तथा लेखकों ने इस क्रांति पर पुनः विचार विमर्श किया। आर. सी. मजूमदार ने 'दी सिपाए म्यूटी एंड दि रिवोल्ट ऑफ 1857' में इस विद्रोह को सैनिक विद्रोह की संज्ञा दी हालांकि कुछ क्षेत्रों में लोगों ने इसका समर्थन किया। सुरेन्द्रनाथ सेन ने अपनी पुस्तक '1857' में वाद–विवाद से बचने का पूरा प्रयत्न किया। न केवल शीर्षक ही इस बात का घोतक है, बल्कि विभिन्न स्थानों पर वह विभिन्न बातों का समर्थन करते हैं। 'आंदोलन एक सैनिक विद्रोह की भांति आरंभ हुआ लेकिन केवल सेना तक सीमित नहीं रहा। सेना ने भी पूरी तरह विद्रोह में भाग नहीं लिया।' साथ ही इस विद्रोह को मात्र सैनिक विद्रोह कहना समुचित नहीं होगा।[6] 1857 ई0 में विद्रोह अवश्यंभावी नहीं था लेकिन साम्राज्य के संविधान में यह निहित था। प्रो0 शशीभूषण चौधरी ने 'सिविल रिवेलियन इन दि इंडियन म्यूटनी' लिखी। इसमें उन्होंने 1857 ई0 के विप्लव को सामान्य जनता का विद्रोह बताया। यह विप्लव केवल एक सामंतीय विद्रोह नहीं था। जमींदारों और ताल्लुकेदारों ने केवल सामंतीय पद्धति के आधार पर संघर्ष में भाग नहीं लिया। उनके समर्थक उनके अधीन रहने वाली कृषक प्रजा मात्र ही नहीं थी, बल्कि उस क्षेत्र की समस्त जनता उनका समर्थन कर रही थी।[7] आर्थिक तत्वों को प्रमुख बताने के लिए "1857 ई0 एक संगोष्ठी" पूरनचंद्र जोशी द्वारा संपादित–प्रकाशित हुई। परन्तु वे सभी विद्वान किसी ठोस परिणाम पर नही पहुँच सके और उत्तर डॉ0 मजूमदार ने "ब्रिटिश पैरामाउंटसी एंड इंडियन रेनेसां" में दिया और डॉ0 मजूमदार का प्रभावशाली उत्तर प्रो0 चौधरी ने अपनी पुस्तक 'थियोरीज ऑफ दि इंदियन म्यूटनी में दिया।[8]

1857 के विद्रोह के संदर्भ में यहाँ एक मूल प्रश्न खड़ा होता है साधारण जनता में इस विद्रोह में किस समय हिस्सा लिया इस प्रश्न के विषय में मजूमदार ने यह प्रकाश डाला है कि जनता का विद्रोह उस समय हुआ जब अंग्रेजी प्रशासन सैनिक विद्रोह के फलस्वरूप समाप्त हो चुका था। डॉ0 चौधरी का मानना है कि विभिन्न स्थानों पर जनता ने पहले विद्रोह किया और बाद में सेना ने। अंग्रेजी सत्ता का भारत के विभिन्न भागों से समाप्त किया जाना सैनिक विद्रोह पर कम और साधारण जनता के विद्रोह पर अधिक निर्भर करता था। इस आधार पर वे इसे केवल सैनिक विद्रोह स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कुछ समकालीन ग्रंथो के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि अंग्रेजों ने स्वयं इसे एक सामान्य जनता का विद्रोह बताया था।[9] डॉ0 मजूमदार ने विद्रोह के स्वरूप निर्धारण में बहादुरशाह, लक्ष्मीबाई, नानासाहब, कुंवर सिंह आदि नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों को अधिक निर्णायक बनाया है। यदि यह मान लिया जाए कि 1857 ई0 की घटनाएँ इन नेताओं के प्रयत्नों द्वारा आरम्भ हुई तब उन नेताओं के उद्देश्यों को 1857 ई0 के स्वरुप के लिए उत्तरदायी मानना उचित होगा। यदि इन नेताओं ने अनिच्छा और विवशता से 1857 ई0 की क्रांति में भाग लिया हो जैसा वास्तव में था और यदि क्रांति उन नेताओं के विद्रोह के पूर्व ही आरंभ हो गई हो तब केवल इन चार प्रमुख

नेताओं के स्वार्थों को इस क्रांति के कारण का जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। डॉ0 चौधरी का यह कथन वास्तव में सत्य है कि अत्यधिक प्रचलित नेताओं या प्रतिनिधियों के व्यक्तिक हितों व स्वार्थों का 1857 ई0 के आरंभ होने में कोई भूमिका नहीं थी।[10] इन चार नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों और हितों पर 1857 ई0 के स्वरूप का निर्धारण ऐतिहासिक तथ्यों की अनदेखी करना है।

1857 के विद्रोह के दौरान अंग्रेजों के प्रति विद्रोही प्रतिनिधियों की क्या विचारधाराएँ थी। वास्तव में इस समय ये लोग अंग्रजों को 'काफिर', 'फिरंगी' कहते थे और उनसे भारत को स्वतंत्र करना तथा उन्हें यहाँ से निकालना चाहते थे। विभिन्न घोषणाओं में अंग्रेजी विरोधी भावनाएँ स्पष्ट थी। इस विद्रोह का लक्ष्य विभिन्न नेताओं के भाषणों के आधार पर ही निर्धारित किया जा सकता है और यह लक्ष्य अंग्रेजों को भारत से निकालना था। इससे बढ़कर स्वतंत्रता संघर्ष के लिए और कोई लक्ष्य नहीं हो सकता।[11] इस तथ्य का समर्थन करते हुए डॉ0 ताराचंद ने भी लिखा है कि विद्रोहियों को संगठित करने वाला एकमात्र तत्व विदेशी शासन को समाप्त करने की भावना थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही संघर्ष हुआ और इसी की सुरक्षा के लिए यह संघर्ष 1857 ई0 के अंत तक चलता रहा।[12] डॉ0 सेन ने एक स्थान पर ठीक ही लिखा है कि जो संघर्ष धर्म सुरक्षा के लिए आरंभ हुआ, उसका अंत स्वतंत्रता संघर्ष के रूप में हुआ। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं कि विद्रोह के नेता अंग्रेजी प्रशासन को समाप्त करके मुगल सम्राट और पुरानी व्यवस्था को पुनः स्थापित करना चाहते थे। डॉ0 मजूमदार के द्वारा कहा गया यह कथन सत्य नहीं मालूम पड़ता कि सामान्य जनता का अंग्रेजों के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण था। हालांकि कतिपय अंग्रेज इतिहासकारों ने आम जनता की सहानुभूति पर प्रकाश डाला है तो कुछ ने जनता द्वारा कष्ट दिये जाने की बात कही है।[13] अंग्रेज अधिकारियों का सामान्य निहत्थी जनता के प्रति निर्मम एवं कठोर व्यवहार उनके प्रतिशोध का सूचक था।

विद्रोही नेताओं ने सिर्फ ब्रिटिशों के विरूद्ध आवाज नहीं उठायी बल्कि अंग्रेज समर्थक भारतीय व्यापारी तथा अधिकारी वर्ग के विरूद्ध भी थी । जमींदारों और कृषकों की आर्थिक कठिनाइयों का लाभ उठाकर व्यापारियों ने अंग्रेजी न्यायालय की सहायता से भूमि पर अधिकार कर लिया था, इसलिए बिहार के विभिन्न क्षेत्रो में कृषकों और पुराने जमींदारों ने व्यापारियों और नए भूस्वामियों के विरूद्ध विद्रोह किया।

कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने इस विद्रोह के स्वरूप के बारे में लिखा है कि 1857 का विद्रोह व्यापक रूप से विस्तृत नहीं था। वास्तविकता यह है कि इसका मुख्य केन्द्र बिहार था किन्तु भारत के अन्य भागों में भी इसका प्रभाव रहा। बंगाल और दक्षिणी भारत के कुछ क्षेत्रो के अलावा शेष भारत के मुख्य क्षेत्रों में इस विद्रोह का प्रभाव रहा। इतने व्यापक क्षेत्र में इससे पहले कभी इतना अधिक विद्रोह नहीं हुआ था। यदि यह विद्रोह अधिक व्यापक नहीं हो सका तो इसका प्रमुख कारण था देश की भौगोलिक विशालता एवं यातायात की दुर्गमता।

हालांकि 1857 में हुए विद्रोह पूर्णरूप से सफल नहीं हो सका जिसके कारण ब्रिटिशों के खिलाफ किया गया सैनिक विद्रोह बेकार साबित हुआ, परन्तु भारतीय परंपरा में 1857 ई0 की क्रांति और इसके प्रसिद्ध नेता अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संघर्ष के प्रतीक बनकर रहे। यह संघर्ष भावी पीढ़ियों को भारत की स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करता रहा। सामंतीय तत्वों के नेतृत्व अवश्य उपलब्ध रहा लेकिन उस समय सामंती भक्ति और निष्ठा ही देशभक्ति की प्र्यायवाची थी। किसी भी आंदोलन की लोकप्रियता का अनुमान लगाते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी विद्रोह में एक अल्पसंख्यक वर्ग ही दृढ़संकल्प वाला होता है और किसी भी समय में किसी भी देश में एक विद्रोह या क्रांति को सभी वर्गों का समर्थन नहीं प्राप्त होता है।[14]

ब्रिटिश द्वारा स्थापित नई शासन व्यवस्था के खिलाफ असंतोष जताने का नागरिकों के पास विद्रोह ही सिर्फ एक रास्ता बचा था। अंग्रेज साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने इन विद्रोहों को सामंती असंतोष की अभिव्यक्ति कहकर उनके महत्व को कम करने का प्रयास किया है। उन विद्रोहों के पीछे सामंती असंतोष तो था ही, साथ ही किसी भी समाज में सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति प्रचलित माध्यम से ही हो सकती थी और यह माध्यम नागरिक ही थे।

भारत के मूल निवासियों के लिए अलग–अलग तरह की आपतियों तथा असुविधाओं का जनक का कारण था अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होना। प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में अंग्रेजी नीति ने पुरानी प्रचलित व्यवस्था को अस्त वयस्त कर दिया। विभिन्न वर्गों के जीवन–निर्वाह के लिए अंग्रेजी साम्राज्य विनाशकारी सिद्ध हुआ। असंतोष की व्यापकता के फलस्वरूप ही 1857 में भारत के विभिन्न वर्गों ने अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध विद्रोह किया।[15] इसलिए विद्रोह के कारणों की समीक्षा पिछले सौ वर्षो के अन्दर उत्पन्न परिवर्तित परिस्थिति के परिवेश मे ही की जा सकती है।

असंतोष : अंग्रेजो के प्रति व्यापक असंतोष आर्थिक और राजनीतिक शोषण से उतना अधिक नहीं फैला था जितना कि अंग्रेज अधिकारियों द्वारा भारतीयों के प्रति तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण तथा ईसाई मिशनरियों के पक्षपातपूर्ण समर्थन से उत्पन्न हुआ। अंग्रेज अपनी जातीय सभ्यता उच्चता में विश्वास रखते थे और प्रत्येक भारतीय को उसकी हीनता से अवगत कराना चाहते थे। राजा राममोहन राय, सर सैयद अहमद खाँ और अन्य सम्मानित भारतीय नेताओं को अपने जीवन में अंग्रेजो के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार का अनुभव करना पड़ा। समाचार पत्रो में विभिन्न ऐसी घटनाओं का वर्णन होता रहता था। जिनमें अंग्रेजों के भारतीयों पर घातक प्रहार करने पर भी न्यायालय द्वारा उन्हें निर्दोष घोषित कर दिया जाता था इससे भी अधिक असंतोष अंग्रेज अधिकारियों द्वारा पादरियों के समर्थन से पैदा हुआ था। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ईसाई मिशनरियों की कार्यवाही से व्यापक असंतोष फैला हुआ था। सर सैयद ने अपनी पुस्तक ' असबाब बगावत–ए–हिन्द' (भारतीय विप्लव के कारण) में इस विषय पर विस्तृत चित्रण किया है। मिशनरी स्कूलों में पढ़े भारतीय विधार्थियों द्वारा भारतीय धर्मों की खुली आलोचना से यह विश्वास बड़ी सरलता से फैलता गया कि मिशनरी स्कूल भारतवासियों को ईसाई बनाने के साधन मात्र थे। बहुत से अंग्रेज अधिकारी (मैकाले की भांति) इस विचार का स्पष्ट समर्थन करते थे। सरकारी स्कूलों में बाइबिल की शिक्षा अनिवार्य थी। विधार्थियों को हिन्दू धर्म की आलोचना तथा ईसाई धर्म की सर्वोच्चता बताई जाती थी। आकलपीड़ितों, वंदियों, विधवाओं, अनाथ बालकों को बलपूर्वक ईसाई बना लिया जाता था। भारत में जिस तरह राजनीतिक एकता स्थापित हुई थी उसी तरह धर्म की प्रधानता भी स्थापित होनी चाहिए। मिशनरियों के इस सोच और तर्क का समर्थन बहुत से अधिकारी भी करते थे। 1850–1856 ई0 के समाज सुधार अधिनियम हिन्दु समाज पर खुले प्रहार थे। रेलों का निर्माण भी उस दूषित वातावरण में हिन्दु समाज पर एक आक्षेप समझा गया। सर सैयद अहमद वास्तव में हिन्दू तथा मुसलमान जनता को ईसाई बनाना चाहती थीं अंग्रेज अधिकारियों ने इस व्यापक संदेह को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। भारतवासियों को अपने धर्म के संबंध में अंग्रेजी नीति के प्रति भारी संदेह था। यह संदेह ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का ही परिणाम था। इसी संदेह के समय में चरबी वाले कारतूस की बात सामने आयी जो विद्रोह को फैलाने मे आग में घी डालने का कार्य किया।[16]

कृषक, शिल्पी, जमींदार, व्यापारी सभी वर्ग अंग्रेजी आर्थिक नीतियों से दुःखी थे, केवल वे लोग प्रसन्न थे जो अंग्रेजी नीतियों के फलस्वरूप समाज में नया स्थान प्राप्त करने के इच्छुक थे। सरकारी नौकरियों के इच्छुक अंग्रेजी पढ़े– लिखे नवयुवक अथवा बंगाल का जमींदार वर्ग या वकीलों को छोड़कर समाज के अन्य बहुसंख्यक वर्ग अंग्रेजी साम्राज्य की नीतियों से दुःखी थे।

विभिन्न राजाओं एवं राजवंशो का भारत पर अंग्रेजों का अधिपत्य होने से विलय हो गया। इसका प्रभाव केवल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं था बल्कि उन पर आश्रित सामंतों, सैनिकों, शिल्पियों तथा अन्य वर्गों पर भी पड़ा था। डलहौजी की राज्य अपहरण नीति से यह संभावना भी उत्पन्न हो गई थी कि भारत के शेष राज्यों को भी किसी न किसी बहाने से अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया जाएगा। अवध से अधिक अंग्रेजों का समर्थन तथा आज्ञाकारी राज्य अन्य कोई भी नहीं था। सतारा से पुराने अथवा नागपुर से अधिक प्रतिष्ठित राजघराने कम ही थे। जब इन राज्यों को ही अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया तब शेष राज्यों का अस्तित्व कभी भी समाप्त किया जा सकता था। बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सिर्फ अपदस्थ राज्य ही नहीं बल्कि सभी राज्य भयभीत हो गया कि उनके हित सुरक्षित नहीं है।[17]

ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा किये गये सुधारों ने प्राचीन भारतीय व्यवस्था को पूर्ण रूप से उगमोल कर दिया। कागज पर देखने में भले ही ये परिर्वतन सूधार दिखाई देते हों, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से अत्यंत अलोकप्रिय तथा कष्टप्रद परिवर्तन थे। इन परिवर्तनों में दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : न्याय प्रशासन तथा भू राजस्व प्रबंध। अंग्रजी न्याय प्रशासन एक भिन्न प्रशासनिक व्यवस्था का प्रतीक था। विधि प्रणाली और संपति अधिकार पूरी तरह से नए थे। सामान्य भारतीय उनसे पूरी तरह अपरिचित था। न्याय प्रणाली में अत्यधिक धन तथा समय नष्ट होता और फिर भी निर्णय अनिश्चित था। भू राजस्व प्रणाली को नियमित बनाने में राजस्व का बोझ कृषकों पर अधिक बढ़ गया था। प्रायः प्रत्येक भू राजस्व प्रणाली स्थायी, रैयतवाड़ी, महलवाड़ी का एक ही परिणाम था कि कृषकों से पहले की अपेक्षा दुगुने से भी अधिक लगान लिया गया। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव किसानों के जीवन पर पड़ा। उसने भी 1857 के विद्रोह में बढ़–चढ़ कर भाग लिया।

संदर्भः

1. के0 के0 गुप्ता सेन, रिसेन्ट राइटिंग्स ऑन द रिबोल्ट ऑफ 1857 : अ सर्वे, आई सी0 एच0 आर0, 1975, पृ093
2. उपरोक्त, पृ0 94–95
3. प्रसन्न कुमार चौधरी व श्रीकांत, 1857 बिहार–झारखंड महायुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0 18
4. प्रसन्न कुमार चौधरी व श्रीकांत, पूर्व उद्धत, पृ0 21
5. शेखर बंधोपाध्याय, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट लॉग्मैन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2007, पृ0 52
6. बिपिन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविधालय, दिल्ली, 1998, पृ0109
7. उपरोक्त, पृ0 108
8. ई0 एम0 एस0 नंबूदिरिपाद, भारत का स्वाधीनता संग्राम, जानकी प्रकाशन, पटना, 2008, पृ0 310
9. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पृ0 89
10. ब्दी नारायण, रश्मि चौधरी एवं संजय नाथ, 1857 का मासंग्राम वैकल्पक इतिहास की ओर, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2010,पृ0 56
11. शम्सुल इस्लाम, 1857 की हैरत अंगेज दास्ताने, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ0 72
12. कमेन्द्रु शिशिर, 1857 की राजक्रांति : विचार और विश्लेषण, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004, पृ0 201
13. अयोध्या सिंह पूर्व उद्धत,पृ0 90
14. भारत सिंह, 1857 की क्रांति और उसके प्रमुख क्रांतिकारी, राधा पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, 2014, पृ0 33
15. अखिलेश मिश्र, 1857 अवध का मुक्ति संग्राम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010,पृ0 129
16. प्रसन्न कुमार चौधरी व श्रीकांत, पूर्व उद्धत,पृ0 25
17. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009,पृ0 03